बाल गुरु

हिन्दी ADDA

मृदुला गर्ग

बाल गुरु

लड़का तब चौथी कक्षा में पढ़ता था। इतिहास की क्लास चल रही थी। टीचर बोल रही थी कि बस बोल रही थी। ज्ञानवर्द्धक अच्छी-अच्छी बातें। कम अज कम कयास तो यही लगाया जाता है। सहसा उस पर नजर पड़ी कि झपट ली, "अकबर के पिता का नाम बतलाओ।"

"मुझे नहीं मालूम," उसने कहा।

"क्यों नहीं मालूम? जो मैं कह रही थी, सुन नहीं रहे थे?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं?" टीचर का पारा आहिस्ता-आहिस्ता ऊपर चढ़ रहा था हालाँकि उसे अपने संयत स्वभाव पर खासा गर्व था।

"मैं सोच रहा था," जवाब ने उसे कुछ और चिढ़ाया।

"वाकई! किस बारे में सोच रहे थे?"

"बारे में नहीं, बस सोच रहा था।"

"वाह! हम भी जानें क्या सोच रहे थे?"

"वह पता होता तो मैं सोचना बंद न कर देता।" गहरे सोच में डूबे उसने कहा।

टीचर का दिमागी थरमामीटर टूटने की कगार पर पहुँच गया। फिर भी खुद पर काबू रखा। वह नहीं चाहती थी उसका रक्तचाप और बढ़े।

"पहले लापरवाही, ऊपर से बदतमीजी!" सख्त पर मद्धिम स्वर में उसने कहा, "चलो प्रिन्सिपल के पास।"

प्रिन्सिपल अजब उलझन में पड़ गया। सोचना शुरू किया तो सोच का दायरा बढ़ता चला गया।

क्या सोचना गलत था?

क्या सच बोलना गलत था?

सही क्या था और क्या गलत?

ज्यादा महत्वपूर्ण क्या था, सोच-विचार करके सत्य की पड़ताल करना या तथ्यों की सूची का बखान सुनना?

उस दौरान टीचर उसके खिलाफ शिकायतों की एक लंबी फेहरिस्त गिनाती रही। बर बार इस जुमले को दुहरा कर, हालाँकि अपने लंबे शिक्षण काल में उसने अपने गुस्से पर काबू रखना काफी अच्छी तरह सीख लिया था पर हर चीज की एक हद होती है। हद पार कर लेने पर भी किसी को उसके किए की सजा न मिले तो फिर कोई हद बाकी नहीं

रहती। भाषा और मुहावरे पर उसकी पकड़ उस्तादों वाली थी। आखिर थी जो उस्ताद, वह भी इतिहास की। काफी देर बोल लेने के बाद उसने पूछा, "तो आपका क्या निर्णय है?"

"सॉरी," प्रिन्सिपल ने कहा, "आपने क्या कहा, मैंने सुना नहीं।"

"मैंने पूछा, "आपका क्या निर्णय है?"

"वह नहीं। उससे पहले आपने जो कहा, मैं सुन नहीं पाया।"

"कुछ नहीं! कैसे? क्यों?" टीचर अकबकाई।

"मैं सोच रहा था।"

"क्या सोच रहे थे?"

"वह पता होता तो मैं सोचना बंद न कर देता..." उसने कहना शुरू किया, फिर सँभल कर रुक गया। क्या वह भ्रष्ट हो रहा था? जो था, उससे अलग होने के लिए, उसकी उम्र शायद ज्यादा हो चुकी थी।

उसने लड़के को कड़ी चेतावनी दी। स्कूल के नियम-कायदों के मुताबिक रहना सीखे। दुबारा ऐसी गुस्ताखी की तो स्कूल से निकाला भी जा सकता था।

अगले दिन, प्रिन्सिपल ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा माँगा नहीं गया था। उसने खुद-ब-खुद निर्णय ले लिया।

लड़का अपनी गति से चलता रहा और आखिर दसवीं कक्षा का इम्तिहान पास कर गया। उतने ऊँचे अंकों से नहीं, जितने की उसके माता-पिता को उम्मीद थी। पर जितने उसकी टीचर के अनुसार आने चाहिए थे, उनसे कहीं ज्यादा ले कर। उसकी माँ, इम्तिहान से दो महीने पहले उसे पीलिया हो जाने को कम अंकों के लिए जिम्मेवार ठहरा रही थी तो क्लास टीचर बीमारी के बावजूद उतने अंक पाने के लिए, उसकी बेपनाह-बदतमीज जिद को।

जो हो, वह दसवीं के बोर्ड इम्तिहान के साथ जूनियर साइंस टैलंट छात्रवृत्ति के लिखित पर्चे में भी पास हो गया।

अगले दिन साक्षात्कार या मौखिक इम्तिहान होना था कि अचानक उसे जोरों का बुखार चढ़ गया। कोई बात नहीं, माँ ने सोचा, आधुनिक चिकित्सा जिंदाबाद! एक ही दिन में एंटीबायोटिक का चमत्कार बुखार नीचे ले आएगा। अगली सुबह वह इम्तिहान दे लेगा। साक्षात्कार के लिए इस्त्री की हुई साफ-सुथरी कमीज और पैंट आलमारी में टँगी थीं। बस जूते गंदे थे, बहुत नहीं पर पॉलिश की चमक से महरूम। साक्षात्कार के लायक कदापि नहीं।

शाम घिर आई। बुखार तब भी काफी तेज बना रहा। जूते पॉलिश नहीं हो पाए।

"क्यों न जूतों को मोची के पास भेज कर पॉलिश करवा लें," माँ ने सुझाव रखा, "इतने तेज बुखार में तुम नहीं कर पाओगे, है न?"

"नहीं," उसने कहा, "मैं खुद करूँगा।"

"कब?"

जवाब नहीं आया।

"सुबह बहुत जल्दी घर से निकलना है। बुखार की बात छोड़ो। न भी होता तो सुबह जूते पॉलिश करने का वक्त नहीं होता तुम्हारे पास।"

जवाब फिर भी नदारद रहा। आँखें मुँदी देख माँ ने सोचा, शायद नींद आ गई है। बुखार उतारने के लिए आराम करना, बल्कि सो रहना, निहायत जरूरी था। सो उसे सोने दिया।

पर जूते? बे-पॉलिश जूते सिर पर सवार थे। बमुश्किल एक घंटा अधैर्य पर काबू रखा फिर हथियार डाल दिए। जूते ले कर बैठ गई। वैसे भी जूते पॉलिश करने के अपने कौशल पर उसे काफी नाज था।

हमेशा की तरह जूते पॉलिश करने में बहुत मजा आया। कैसे उन्होंने उसके हाथों के इशारों पर नई जिंदगी पाई। एक पल वे सड़क के गलीज बच्चों की तरह दीख रहे थे तो दूसरे पल, पब्लिक स्कूल के चमचमाते छात्रों की मानिंद! वाह! अपने चेहरे और प्यार भरे दिल की हूबहू प्रतिछाया देखने के लिए पॉलिश किए जूतों से उम्दा आरसी नहीं मिलेगी। हाथ कंगन को आरसी क्या? वाजिब है। पर दिल तो हम हाथ में लिए घूमते नहीं। उसे चाहिए एक जोड़ी पॉलिश किए जूते। उसे अपने पर गर्व हो आया। बड़ी

आजिजी से चमचमाते जूते उसके बिस्तर के बराबर रख दिए। आँख खुलते ही उन पर नजर पड़ेगी।

अल्लसुबह बुखार जाँचा। था तेज। पर चारा क्या था। सँभाल लेगा। उसके लिए नाश्ता तैयार किया। मेज पर रख, बेटे को बुलाने उसके कमरे में गई। देखा, वह हाथ में जूता पकड़े फर्श पर बैठा था।

"मैंने कल रात पॉलिश कर दिए थे," उसने सगर्व कहा।

"मालूम है," उसने कहा और ब्रश उठा लिया।

तब जाकर उसकी नजर जूतों पर गड़ी। जहाँ-तहाँ मिट्टी लिसड़ी पड़ी थी। पर... कैसे?

वह मनोयोग से जूतों पर ब्रश मारता रहा। फिर पास रखा कपड़ा उठा उन्हें चमकाने लगा।

"पर जूते... मैंने पॉलिश..." उसने निरर्थक संवाद बोला।

"तभी मुझे बगीचे से मिट्टी ला कर उन पर डालनी पड़ी। मेरे जूते मेरे सिवा कोई पॉलिश नहीं करता।" उसका चेहरा जूतों की तरह चमक रहा था।

लड़का अब बीस बरस का हो चुका था। अमरीका के सैन फ्रेंन्सिस्को शहर में काम कर रहा था। तभी वहाँ बीसवीं सदी का मशहूर जलजला आया। माँ को आ चुकने पर पता चला। टी.वी. की मार्फत। देखा, सुना और महसूसा। एक बार नहीं, बार-बार। वे गोल्डन गेट के पास धसकी जमीन में गिरी मोटरगाड़ी को बार-बार दिखला रहे थे। बार-बार देखने पर लगता है, एक नहीं, अनेक हादसे घट लिए। बशर्ते आपका उनसे निजी सरोकार हो। हादसा तभी हादसा बनता है न जब किसी को कोई फर्क पड़े?

छत्तीस घंटे अकेले हादसे महसूसते गुजरे। तमाम फोन लाइने बंद थीं, किसी और रास्ते खबर मिलनी मुमकिन न थी। उससे बात हो पाने का तो सवाल ही नही था।

छत्तीस घंटे बीत जाने पर आखिर फोन लगा।

"प्याला टूट गया," उसने कहा।

"तुम्हारे सब दोस्त ...दफ्तर में सहयोगी, सब ठीक हैं?"

"प्याला टूट गया," उसने फिर कहा।

किस प्याले की बात कर रहा था वह। कोई कप होगा; जीत में मिला होगा। पर उसकी परवाह कब से होने लगी उसे!

"क्या बहुत कीमती था?" खासा बेवकूफ महसूस करते हुए उसने पूछा।

"नहीं। वह खाली मेज के बीचोंबीच रखा था, फिर भी टूट गया।"

"तुमने टूटते देखा?"

"हाँ। मैंने तभी मेज के बीचोंबीच रखा था। मेज बिल्कुल खाली थी। तुम समझ रही हो न? मेज पर और कुछ नहीं था। फिर भी वह टूट गया।"

"टकराए बिना गिर कर?"

"वही तो।"

"समझी, जलजला बहुत बुरा था।"

"बुरा नहीं, बड़ा था।" उसने कहा।